ब्रह्मनिष्ठ संत स्वामी आसूदाराम साहिब (सख़ी बाबा) जी के १०८ विशेष दिव्य गुण

1- शांत स्वभाव – स्वामी जी बचपन से ही शांत स्वभाव के थे।

2. वीतरागी – स्वामी जी को बाल्यावस्था से ही संसार में आकर्षण नहीं था।

3. आत्मवान् – स्वामी जी बचपन से ही प्रभुपरायण थे। एक परमात्मप्राप्ति ही उनके जीवन का लक्ष्य था।

4. निर्विकार – बाल्यावस्था से ही स्वामी जी के स्वभाव में लेशमात्रा भी राग–द्वेष व छलकपट नहीं था।

5. आज्ञापालन – स्वामी जी ने माता–पिता और सद्गुरूदेव की आज्ञा का सदैव अक्षरक्षः पालन किया।

6. अंतर्मुखी – स्वामी जी बचपन से ही अंतर्मुखी स्वभाव के थे।

7. निश्चयात्मिका बुद्धि – संसार से सर्वथा विरक्त रहकर एक परमात्मा की तरफ चलना है। स्वामी जी का बाल्यकाल से ऐसा दृढ़ निश्चय था।

8. संत का संग — स्वामी जी को बचपन से ही संत सद्गुरू का सान्निध्य प्राप्त करने की विशेष चाह रहतीं थी। परमात्मा की असीम अनुकम्पा से उन्हें बाल्यकाल में ही संत दर्शन और संत सान्निध्य मिल गया।

9. विरह का भाव — स्वामी जी को किशोरावस्था में अपने सद्गुरू देव का विरह था (शीघ्र मिलन की चाह थी) तथा युवावस्था में परमात्मा का विरह था (शीघ्र मिलन की चाह थी) जो स्वामी जी के शीघ्र परमात्माप्राप्ति में सहायक सिद्ध हुआ।

10. प्रभुपरायण — बाल्यकाल से ही स्वामी जी की केवल परमात्मा में ही महत्वबुद्धि थी। वे सदा परमात्मसम्बन्धी विचारों में ही मग्न रहते थे। उनकी अपने सद्गुरू तथा संतों के गुणों में श्रेष्ठ बुद्धि थी। अतः वे उन गुणों को आदर्श मानकर आदरपूर्वक उनका अनुसरण करने के लिए भगवान के परायण रहते थे। इस प्रकार भगवान का चिन्तन करने से और भगवान पर ही निर्भर रहने से वे सब गुण उनमें स्वतः ही आ गये।

11. शम — स्वामी जी ने बाल्यावस्था से ही मन को इन्द्रियों के विषयों से हटाया हुआ था।

12. मुमुक्षुता — स्वामी जी के ह्रदय में बाल्यावस्था से ही संसार के भवबंधन से मुक्ति की इच्छा थी। इस कारण नौ वर्ष की अवस्था में ही उनके पिताश्री लुधड़ोमल जी उन्हें संत शिरोमणि सच्चे सांई सतराम दास साहिब जी की शरण में ले गए।

13. विवेक — स्वामी जी ने बाल्यावस्था से ही सत् और असत् को अलग–अलग जाना।

14. इन्द्रिय संयम — स्वामी जी ने स्वाभाविक रूप से ही इन्द्रियों को अपने वश में किया हुआ था।

15. एकान्तसेवी — स्वामी जी ने अपनी सारी वृत्तियों का एक (परमात्मा) में ही अंत कर दिया था।

16. असंसारी — तीनों गुणों (सत्, रज, तम) के कार्यरूप संसार की इच्छा का त्याग कर स्वामी बाल्यावस्था से ही संसार से ऊँचे उठे हुए थे।

17. भाव — स्वामी जी सदा (परमात्म) भाव में स्थित रहते थे।

18. वैराग्यवान — स्वामी जी ने बाल्यावस्था से ही सत् और असत् को अलग–अलग जानकर असत् का त्याग किया, जो उनकी संसार से विमुखता के रूप में दृष्टिगोचर हुआ।

19. बुद्धियोग (समता) — बाल्यावस्था से ही स्वामी जी की सर्वत्रा भगवद्बुद्धि होने तथा राग–द्वेष से रहित होने के कारण उनका किसी के भी प्रति शत्रुा–मित्रा का भाव नहीं था। वेनिरंतर समता में स्थित रहते थे। समता के कारण वे संसार में रहते हुए भी संसार से सर्वथा निर्लिप्त रहते थे।

20. शुद्ध अंतःकरण — बाल्यावस्था से ही स्वामी जी के विचार, भाव, उद्देश्य तथा लक्ष्य केवल एक परमात्मा प्राप्ति ही थे। इस कारण उनका अंतःकरण शुद्ध था।

21. आर्जव — स्वामी जी के शरीर–मन–वाणी में सरलता थी। उनके मन–वचन और कर्म तीनों में एक ही बात थी। स्वामी जी में सीधापन स्वाभाविक रूप से ही था।

22. वाणी की सिद्धि — बाल्यकाल से ही स्वामी जी की वाणी सिद्ध थी। एक बार उनके पिताश्री के घुटने का जख़्म नासूर में बदल गया। इलाज से फायदा न होता था। जब बालक आसूदाराम को पिताश्री से पता चला तो उन्होंने पिताश्री से कहा – “आप अपने कुएँ पर रोज झाड़ू लगाया करें, ज्योति जलाया करें और कुएँ पर जमी काई को जख़्म पर लगाया करें ईश्वर की कृपा से सब ठीक हो जायेगा।” पिताश्री ने वैसा ही किया और उनका जख़्म शीघ्र ही ठीक हो गया।

23. दम — स्वामी जी ने बाल्यावस्था से ही इन्द्रियों को विषयों से हटाया हुआ था।

24. निष्कामता — स्वामी जी का सम्पूर्ण जीवन कामनाओं से रहित था। निष्कामता की मानो वे प्रतिमूर्ति ही थे।

25. समर्पण का भाव — सद्गुरू के दर की सेवा में स्वामी जी का सद्गुरूदेव के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव था।

26. समाधान — स्वामी जी को ईश्वर व सद्गुरू के प्रति पूर्ण आस्था थी। स्वामी जी के अंतःकरण में उनके प्रति लेशमात्रा भी शंका नहीं थी।

27. सेवाभाव — स्वामी जी ने सद्गुरू के दर पर गऊओं की सेवा मातृवत की। उनकी यह सेवा कालान्तर में “संत आसूदाराम की विलक्षण गोसेवा” के नाम से विश्वविख्यात हुई। (‘कल्याण’, अंक मार्च 1995 में गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा

प्रकाशित)

28.	एकाग्रचित्त	स्वामी जी जो भी कार्य करते, बड़े एकाग्रचित्त होकर तन्मयतापूर्वक करते, चाहे वो सेवा कार्य हो, चाहे भजन,सुमिरण अथवा ध्यान।
29.	त्यागी	स्वामी जी जो कुछ भी करते थे उसके साथ में अपने लिए कुछ भी चाह नहीं रखते थे।
30.	उपरति	स्वामी जी ने वृत्तियों को संसार से पूर्णतः हटाया हुआ था।
31.	निर्मल मन	स्वामी जी जैसे अंदर थे वैसे ही बाहर। उनकी कथनी और करनी में अंतर नहीं था।
32.	सम	स्वामी जी सुख व दुःख की प्राप्ति में सम रहते थे। अनुकूलता–प्रतिकूलता उनके ह्रदय में राग–द्वेष, हर्ष–शोक आदि विकार उत्पन्न नहीं कर सकते थे। पहले– पहल अपने गुरू दरबार 'रहड़की साहिब' आने के तीन वर्ष पश्चात् स्वामी जी के पिताश्री लुधड़ोमल जी परलोक सिधार गए। दुःख–सुख में सम आसूदाराम ये समाचार पाकर भी पूर्णतया शांतचित्त रहे। वस्तुतः वे हर्ष–शोक, चिंता–मोह आदि से पहले ही परे हो चुके थे।
33.	सद्‌गुरूदेव से प्रेम	स्वामी जी का अपने सद्‌गुरूदेव सच्चे सांई सतरामदास जी से अगाध प्रेम था। सच्चे सांई ने अपने प्यारे आसूदाराम पर कृपावृष्टि करते हुए उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर कृतार्थ किया। तत्पश्चात् स्वामी जी ने संत कंवरराम साहिब जी को अपने सद्‌गुरूदेव के रूप में अपने हृदयासन में विराजमान किया।
34.	धैर्यवान	स्वामी जी द्वारा नाम दान के लिए की गई पहली विनती को पूज्य भगत साहिब (सांई कंवरराम साहिब जी) द्वारा अस्वीकार किये जाने पर भी स्वामी जी शांतचित्त रहे; उन्होंने धैर्य नहीं खोया और वर्षों तक सद्‌गुरूदेव के दर पर उत्साह, लगन व प्रेम से सेवा करते रहे। स्वामी जी की निष्काम सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन सद्‌गुरूदेव ने उन्हें नाम दान देकर निहाल कर दिया।
35.	ज्ञानवान	स्वामी जी मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियाओं में कर्तापन के अभिमान से रहित होकर सर्वव्यापी, सच्चिदानंदघन परमात्मा में एकीभाव से नहीं था।
36.	अनपेक्ष	स्वामी जी किसी भी प्रकार की अनुकूलता की कामना नहीं करते थे।
37.	तितिक्षा	स्वामी जी सर्दी–गर्मी आदि द्वन्द्वों को सहकर, उनकी उपेक्षा करके शांतचित्त से धैर्यतापूर्वक पूरे मनोयोग से सेवा करते थे।
38.	गुरूमुख	जिसमें गुरू की प्रसन्नता हो वही शिष्य का कर्तव्य होता है। एक बार अनायास ही संत कंवरराम साहिब जी की नज़र आसूदाराम जी की बढ़ी हुई दाढ़ी पर पड़ी। वे बोले 'भाई आसूदा आपके मुखमण्डल पर यह दाढ़ी तो बहुत अच्छी

लग रही है'। सद्‌गुरूदेव का इतना ही कहना था कि तब से आसूदाराम जी ने दाढ़ी धारण कर ली।

39.	स्वाध्याय	'स्वस्य अध्यायः (अध्ययनम्) स्वाध्यायः' के अनुसार स्वामी जी ने अपनी वृत्तियों का, अपनी स्थिति का, अपने साधनाकाल में ठीक तरह से अध्ययन किया और वृत्तियों को अपना मानने की मूल अशुद्धि को दूर करके परमात्मस्वरूप को प्राप्त किया।
40.	तप	अपने साधनाकाल में मिली हुई अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थिति को भगवान द्वारा भेजी हुई समझकर उसे सहन करते हुए स्वामी जी विशेष उत्साह से प्रसन्नतापूर्वक साधन में प्रवृत्त रहे।
41.	निर्द्वन्द्व	स्वामी जी बाल्यावस्था से ही राग–द्वेष आदि द्वन्द्वों से रहित थे। इसी कारण युवावस्था में ही परमात्मप्राप्ति की उनकी साधना दृढ़ थी।
42.	यज्ञ	स्वामी जी ने सद्‌गुरुदेव की आज्ञापालन कर गुरू दरबार की सेवा बड़े ही तन–मन से की और सद्‌गुरू की प्रसन्नता प्राप्त की। गो सेवा भी उन्होंने गऊ में मातृभाव तथा ईश्वर भाव से की। इस प्रकार उन्होंने यह श्रेष्ठ यज्ञ किया।
43.	ज्ञानयोगव्यवस्थित	स्वामी जी अपने साधनाकाल में परमात्मा के स्वरूप को तत्व से जानने के लिए सच्चिदानंदघन परमात्मा के स्वरूप में एकीभाव से ध्यान की निरंतर प्रगाढ़ स्थिति में रहते थे।
44.	स्थितप्रज्ञ	स्वामी जी को कोई कामना नहीं थी। वे सदा अपने स्वरूप में ही संतुष्ट रहते थे। इस कारण उनकी स्थिरबुद्धि (परमात्माप्राप्ति के उद्‌देश्य की दृढ़ता) थी।
45.	दक्ष	स्वामी जी ने मानव–जीवन के उद्‌देश्य की पूर्ति अर्थात् भगवत्प्राप्ति युवावस्था में ही कर ली थी। मानव–जीवन में यही एक करने योग्य काम है। वस्तुतः स्वामी जी वास्तविक अर्थों में चतुर थे।
46.	निर्लिप्त	स्वामी जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन सद्‌गुरू आज्ञा के अनुसार ही व्यतीत किया। स्वामी जी के जीवन का विहंगावलोकन करने पर यही उनके जीवन का सार प्रतीत होता है। किसी भी कर्म में, किसी भी कर्म के फल में, किसी स्थान, समय, परिस्थिति, अंतःकरण, बहिःकरण आदि प्राकृत वस्तु में स्वामी जी की आसक्ति नहीं थी। वस्तुतः स्वामी जी के सारे कर्म निर्लिप्ततापूर्ण थे।
47.	कर्मयोगी	स्वामी जी ने निःस्वार्थ भाव से संसार की सेवा के लिए ही सम्पूर्ण कर्म किए।

48.	संगीत	स्वामी जी ने सांई रूढ़ाराम साहिब जी (संत सतराम दास साहिब जी के भतीजे) की आज्ञानुसार ईश्वर स्मरण कर पहली बार यकतारा बजाना आरम्भ किया तो संगीत की सुरमई लहरें उठने लगीं और शीघ्र ही वे यकतारा बजाने में निपुण हो गये।
49.	भजनभाव	ईश्वर की कृपा से स्वामी जी 36 राग रागिनियों में निपुण थे। उन्होंने संगीत सीखा नहीं था। स्वामी जी यकतारे पर भावपूर्ण होकर भजन गाते थे।
50.	प्रेमाभाक्ति	स्वामी जी जब प्रेम–भक्ति में तन्मय होकर यकतारा बजाते तो ऐसा प्रतीत होता मानो वे प्रभु के साक्षात् दर्शन कर रहे हों।
51.	अभय	स्वामी जी भगवान के शरण होकर सर्वभाव से भगवान का भजन करते थे, जिससे वे सर्वत्रा अभय थे। वैराग्यवान होने के कारण उन्हें इसका भी भय नहीं था कि सांसारिक प्राप्त वस्तुएँ, व्यक्ति अथवा स्थिति कहीं नष्ट न हो जाये। वस्तुतः वे सर्वथा अभय थे।
52.	मधुरवाणी	स्वामी जी प्रायः एकान्त क्षणों में यकतारा बजाकर अपनी मधुर वाणी में ईश्वर का गुणगान करते। स्वयं सांई कंवरराम साहिब जी भी यदाकदा उनके प्रभु के सुमधुर गुणगान को ध्यान से सुना करते थे।
53.	योगी	स्वामी जी भक्तियोग के द्वारा नित्य–निरंतर परमात्मा से संयुक्त रहते थे।
54.	श्रद्धावान	स्वामी जी को सद्गुरूदेव, ईश्वर तथा शास्त्रा आदि पर पूज्यभावपूर्वक प्रत्यक्ष से भी अधिक विश्वास था। उन्होंने सद्गुरू व ईश्वर की मूर्तियाँ, श्रीमद्भागवत्, पंचग्रंथी, व सामी साहिब के श्लोकों की पुस्तक की घर में स्थापना की थी।
55.	विधेयात्मा	स्वामी जी ने अंतःकरण तथा इन्द्रियों को अपने वश में किया हुआ था। उन्होंने न तो इन्द्रियों से किसी विषय का ग्रहण रागपूर्वक किया और न ही किसी विषय का त्याग द्वेषपूर्वक किया। इसके परिणामस्वरूप उन्हें अंतःकरण की प्रसन्नता की प्राप्ति हुई। किन्तु उन्होंने उसका भी संग (भोग) नहीं किया, जिसने उन्हें परमात्मा की प्राप्ति करा दी।
56.	उदासीन	स्वामी जी पर किसी भी घटना अथवा परिस्थिति का असर नहीं पड़ता था। वे सदा निर्लिप्त रहते थे। उनके प्रति मित्राता अथवा शत्राुता का भाव रखने वालों के प्रति भी वे निर्लिप्त रहते थे।
57.	गतव्यथः	कुछ मिले या न मिले, कुछ भी आये या चला जाय किन्तु स्वामी जी के चित्त में दुःख–चिन्ता–हर्ष–शोकरूपी हलचल कभी नहीं होती थी।
58.	संयमी	स्वामी जी ने इन्द्रियों और मन को वश में किया हुआ था; वे भोग और संग्रह में आसक्त नहीं थे; उनका ध्येय केवल परमात्मा था। वस्तुतः वे संयमी थे।

59. सर्वारम्भपरित्यागी — स्वामी जी ने धन–सम्पत्ति के संग्रह और भोगों के लिए किसी तरह का कोई नया कर्म आरम्भ नहीं किया। वे स्वतः प्राप्त परिस्थिति के अनुसार ही प्रवृत्त और निवृत्त होते थे। क्रियाओं में उनकी प्रवृत्ति कामना, वासना और ममता से रहित होती थी तथा निवृत्ति भी मान–बड़ाई की इच्छा से रहित होती थी। अपने सद्‌गुरूदेव की आज्ञा होने पर ही उन्होंने पन्नोंआकिल में दरबार साहिब की स्थापना की।

60. अद्वेष्टा — स्वामी जी द्वेष–भाव से रहित थे। उनके शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और सिद्वांत के प्रतिकूल चाहे कोई कितना ही, किसी प्रकार का व्यवहार करता किन्तु उनके हृदय में उसके प्रति कभी किचिन्मात्रा भी द्वेष नहीं होता था। वे तो प्राणीमात्रा में अपने प्रभु को ही व्याप्त देखते थे। इतना ही नहीं, वे तो अनिष्ट करने वालों की सब क्रियाओं को भी भगवान का कृपापूर्ण मंगलमय विधान ही मानते थे।

61. त्रिगुणातीत — सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की वृत्तियों के आने–जाने से स्वामी जी में कुछ भी फ़र्क नहीं पड़ता था। (वे उन वृत्तियों द्वारा विचलित नहीं किए जा सकते थे) कोई वृत्ति न रहे— ऐसा द्वेष वे नहीं करते थे, और ये वृत्तियाँ पुनः आ जायँ; ये वृत्तियाँ बनी रहें' – ऐसा राग भी वे नहीं करते थे। वे उन वृत्तियों में स्वाभाविक ही निर्लिप्त रहते थे।

62. स्वस्थ — स्वामी जी सदा ही अपने स्वरूप में स्थित रहते थे।

63. शिवस्वरूप — स्वामी जी के विवाह के शुभ अवसर पर अति प्रसन्न सद्‌गुरूदेव संत कंवरराम साहिब जी ने वहाँ पर उपस्थित सम्बन्धियों, भक्तजनों तथा वर को बधाई देने के उपरान्त जब वधू (सौभाग्यवती बैंसर बाई) को भी विवाह की बधाईयाँ दी तो सारे बाराती और आमन्त्रित सज्जनों द्वारा खुशी से आश्चर्य व्यक्त करने पर उन्होंने कहा 'जिस वधू को शिवस्वरूप पति प्राप्त हुआ हो, वह अवश्य ही बधाई की पात्रा है'। (वैराग्य वृत्ति के धनी स्वामी जी ने विवाह भी सद्‌गुरूदेव की आज्ञा होने पर ही किया था।)

64. मौनी — स्वामी जी के द्वारा स्वतः स्वाभाविक ही भगवत्स्वरूप का मनन होता रहता था।

65. शुचि — शरीर में अहंता–ममता न रहने से स्वामी जी का शरीर अत्यन्त पवित्रा था। अंतःकरण में राग–द्वेष, हर्ष–शोक, काम–क्रोधादि विकारों के न रहने से उनका अन्तःकरण भी अत्यंत पवित्रा था। उनके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप और चिन्तन से दूसरे लोग भी पवित्रा हो जाते थे। आज भी स्वामी जी का चिन्तन कर भक्त लोग पवित्राता को प्राप्त होते हैं।

66. सुहृद — स्वामी जी का सब प्राणियों में भगवद्‌भाव था। इस नाते उनका सबके प्रति बिना किसी स्वार्थ के स्वाभाविक ही मैत्राी और दया का भाव रहता था। यही भाव उनके व्यवहार में सदा परिलक्षित होता था।

67. पुरूषार्थी — स्वामी जी को प्रारब्धवश जो भी वस्तु, योग्यता और सामर्थ्य मिली उसको उन्होंने अपना और अपने लिए न मानकर, प्रत्युत दूसरों का और दूसरों के लिए मानकर दूसरों की ही सेवा में लगाया।

68.	परोपकारी	स्वामी जी जब भी जतोइन गांव से पन्नो आकिल कस्बे जाते तो आसपड़ोस के घरों से भी उनकी आवश्यकता की जानकारी लेते। तत्पश्चात पन्नो आकिल से 10–15 किलो सीधा– सामान खरीदकर सिर पर रखकर लाते और उन लोगों को देते थे।
69.	सादगी	स्वामी जी ने अत्यंत सादगीपूर्ण ढंग से जीवन का निर्वाह तथा परिवार का पालन किया।
70.	प्रसन्नचित्त	स्वामी जी ने न तो रागपूर्वक विषयों का सेवन किया और न ही द्वेषपूर्वक विषयों का त्याग किया। वे सदा असंग भाव में रहते हुए प्रसन्नचित्त रहते थे।
71.	निर्योगक्षेम	स्वामी जी को न तो योग (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति) की चाह थी न ही क्षेम (प्राप्त वस्तु की रक्षा) की चाह थी। कोई वस्तु मिल जाए और मिली हुई वस्तु की रक्षा होती रहे, उनमें ऐसा भाव नहीं था।
72.	युक्ति	स्वामी जी कहते थे कि जीवन में युक्ति रखना आवश्यक है। युक्ति से भक्ति प्राप्त होती है और भक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है। स्वामी जी लोकहित में सेवाभावपूर्वक कर्म करते तथा शास्त्राविहित कर्तव्य–कर्म प्रसन्नतापूर्वक करते। वे अल्पाहार करते तथा कुछ समय के लिये विश्राम करते।
73.	नियम	स्वामी जी नियमित रूप से 'सुखमनी साहिब', 'जपु जी साहिब', 'आसा दी वार', 'रहरासि' व 'कीर्तन सुहेला' आदि का पाठ करते थे।
74.	कर्मफलत्यागी	केवल भगवत्µअर्थ (भगवान के लिए) कर्म करने के कारण स्वामी जी का भगवान में प्रेम और श्रद्धा तथा भगवान का चिन्तन सदा बना रहता था।
75.	सन्यासी	स्वामी जी ने स्थूल, सूक्ष्म और कारण, तीनों शरीरों को अपना और अपने लिए नहीं माना प्रत्युत संसार का और संसार के लिए ही माना; और उनके द्वारा होने वाली क्रियाओं, चिन्तन और समाधि को संसार के हित में लगा दिया। वस्तुतः स्वामी जी सच्चे अर्थों में सन्यासी थे।
76.	मौन	स्वामी जी बहुत कम बोलते थे तथा किसी के पूछने पर उसके हित की उचित बात कह देते थे।
77.	योगस्थ	स्वामी जी सांसारिक पदार्थों की प्राप्तिµ अप्राप्ति में, मान–अपमान में,नन्दा–स्तुति में, रोग–निरोगता में सम रहते थे। इस कारण उनके अंतःकरण में हर्षµशोकादि न होकर वे सर्वथा निर्विकार थे।
78.	सत्य भाषण	स्वामी जी में स्वार्थ और अभिमान लेशमात्रा भी नहीं था। इस कारण उनके द्वारा सदा सत्य व्यवहार तथा सबके हित का व्यवहार ही होता था।

79. भाव	निर्मम	स्वामी जी का यद्यपि प्राणीमात्रा के प्रति स्वाभाविक ही मैत्री और करूणा का था तथापि उनकी किसी के प्रति किचिन्मात्रा भी ममता नहीं थी। उनकी अपने शरीर, इन्द्रियों, मन और बुद्धि में भी ममता नहीं थी।
80.	यतात्मा	स्वामी जी एक सिद्ध भक्त थे। उनका संसार से किचिन्मात्रा भी रागयुक्त सम्बन्ध नहीं था, इसलिए उनकी मन–बुद्धि–इन्द्रियाँ स्वाभाविक ही उनके वश में थे।
81.	दृढ़निश्चयी	स्वामी जी प्रतिक्षण बदलने वाले संसार को स्थायी नहीं देखते थे। उनकी बुद्धि में एक परमात्मा की ही अटल सत्ता रहती थी। वे 'एक' भगवान के साथ ही अपने नित्य सम्बन्ध का अनुभव करते थे; जिससे उनका भगवान में दृढ़ निश्चय था।
82.	अमूढ़	आने–जाने वाले पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा या चेष्टा करना तथा उनसे सुखी–दुःखी होना 'मूढ़ता' है। जिस प्रकार मूढ़ (अज्ञानी) मनुष्यों को 'संसार है' ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है, उसी प्रकार अमूढ़ (मोह रहित) भक्तों को 'परमात्मा है' ऐसा स्पष्ट अनुभव होता है। स्वामी जी के सम्पूर्ण जीवन का विहंगावलोकन करने से उनकी अमूढ़ता के स्पष्ट दर्शन होते हैं।
83.	नित्यसत्त्वस्थ	स्वामी जी नित्य–निरंतर रहने वाले, सर्वत्रा परिपूर्ण परमात्मा में निरंतर स्थित रहते थे। इस कारण वे सहज ही द्वन्द्वों से रहित थे।
84.	निःस्पृह	स्वामी जी जीवन–निर्वाह तथा शरीर–निर्वाह के प्रति पूर्णतया बेपरवाह थे। उन्होंने शरीर–निर्वाह के लिए अपनी ओर से कभी किसी साधन को जुटाने का प्रयास नहीं किया।
85.	भक्तिमान्	स्वामी जी की भगवान में अत्यधिक प्रियता थी। इस कारण उनके द्वारा स्वतः — स्वाभाविक भगवान का चिन्तन, स्मरण, भजन होता रहता था।
86.	आत्मरत आत्मतृप्त आत्मसंतुष्ट	स्वामी जी ने संसार से मिले शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहम् को संसार की ही सेवा में लगा दिया। शेष रह गया केवल चिन्मय स्वरूप। इसलिए उनकी प्रीति, तृप्ति और संतुष्टि स्वरूप में ही थी।
87.	अहिंसा	स्वामी जी ने शरीर, मन, वाणी, भाव आदि के द्वारा किसी का भी किसी प्रकार से अनिष्ट नहीं किया और न चाहा।
88.	करूणा कृपा	स्वामी जी की करूणा कृपा से गरीब को धन, निःसंतान को संतान, रोगी को स्वास्थ्य तथा मरणासन्न को जीवनदान मिला। उन्होंने संकट से घिरे जनों को संकट से उबारा तथा अनेकों के कष्ट दूर किए।

89. स्वच्छताप्रिय

स्वामी जी को स्वच्छता बहुत प्रिय थी। वे प्रायः कहते—'भाई ! ईश्वर को स्वच्छता बहुत प्रिय है। मनुष्य को चाहिए कि स्वयं भी स्वच्छ रहे और घर–आँगन व वातावरण को भी स्वच्छ रखे'।

90. तेज

स्वामी जी के तेज के प्रभाव से दुर्गुण– दुराचारी मनुष्य भी सद्गुण–सदाचारी बन जाते थे। भारत के विभाजन के समय जगह–जगह हिंसक वारदातें हो रहीं थीं। ऐसे में एक दिन स्वामी जी पन्नोआकिल से जतोइन गाँव लौट रहे थे। मार्ग सूनसान था। सामने से एक मुसलमान आ रहा था जिसके कंधे पर कुल्हाड़ी व सिर पर खून सवार था। उसने सामने से हिन्दू संत को आते हुए देखकर उन्हें मारना चाहा। अचानक ईश्वर की ऐसी लीला हुई कि उसका क्रोध से तिलमिलाया चेहरा ठंडा पड़ गया और वह शांत भाव से आगे बढ़ गया। वस्तुतः स्वामी जी के तेज का ही ये प्रत्यक्ष प्रभाव था जिससे उसका वैर भाव शांत हो गया।

91. संकटमोचन

एक बार एक दस वर्षीय बालिका दरबार साहिब के कुएँ में गिर गई। यह देखकर उसके सगे–सम्बन्धी रोने–चिल्लाने लगे। तब स्वामी जी ने उन्हें धीरज

देते हुए कहा— 'आप कुछ क्षणों के लिए शांत रहें और सद्गुरू पर भरोसा रखें, ईश्वर सब ठीक करेगा'। स्वामी जी की आज्ञा से एक मंजी (छोटी खटिया) को रस्सी के सहारे कुएँ में उतारा गया। कुछ ही क्षणों में वह बालिका मंजी पर बैठकर बाहर निकल आई। जब बालिका से उसके सगे– सम्बन्धियों ने पूछा—'तुम अंदर कैसे जीवित बची रहीं'? तब बालिका ने बताया कि उसे दाढ़ी वाले बाबा (स्वामी जी) गोद में लिए बैठे थे।

92. भक्तवत्सल

एक बार पंवहारनि गाँव पधारने हेतु सेवकों के आग्रह पर स्वामी जी बिना घोड़े की प्रतीक्षा किए पैदल ही बड़ी तेजी से बिना कहीं रूके चल दिए। बाद में घोड़े के बजाए पैदल आने का कारण पूछने पर स्वामी जी ने कहा**μ**'भाई! हमें सेवकों ने बड़ी व्यग्रता से याद किया था, अतः हम स्वयं को रोक न सके और यहाँ पहुँच गये'।

93. क्षमा

स्वामी जी के प्रति कोई कितना ही बड़ा अपराध कर देता, अपनी सामर्थ्य रहते हुए भी स्वामी जी उसे सह लेते और उस अपराधी को अपनी तथा ईश्वर की तरफ से यहाँ और परलोक में कहीं भी दण्ड न मिले— ऐसा भाव रखते।

94. त्रिकालदर्शी

स्वामी जी ने एक बार अपने सुपुत्रा चाण्डूराम को किसी बालवत् शरारत के कारण घर के सामने स्थित खजूर के पेड़ से बँधवाया। जब ममतामयी माँ ने अपने लाल को बँधा हुआ देखा तो वे शीघ्र दौड़ती हुई स्वामी जी के पास आईं और कहने लगीं**μ** 'मेरे लाल को क्यों बाँधा है'? तब वात्सल्य के धनी स्वामी जी ने उनसे कहा— 'बेशक, गुरूनानक देव जी के लाल लक्ष्मीचंद जी के समान यह लाल है, और निःसंदेह आगे चलकर लाल की भाँति चमकेगा'। उसी समय ईश्वर की ऐसी लीला हुई कि बालक चाण्डूराम का मुखड़ा स्वामी जी के कथनानुसार अनायास ही लाल की तरह चमकने लगा। स्वामी जी के वचनानुसार आज संत शिरोमणि सांई चाण्डूराम साहिब जी निःसंदेह एक लाल की भाँति चमक रहे हैं। जिनके ज्ञान का प्रकाश आज जन–जन के हृदयाकाश को आलोकित कर रहा है।

95. सत्यसंकल्प — एक बार संगत के सम्मुख स्वामी जी द्वारा जलगांव के संत हरदास राम साहिब जी का स्मरण होने के कुछ क्षणों में ही संत हरदास राम साहिब जी वहाँ आ पधारे। स्वामी जी द्वारा उनके स्वागत—सत्कार के पश्चात् उनसे पूछने पर कि आप इस समय किधर से पधार रहे हैं, वे बोले— 'भाई ! बुलाते भी स्वयं हो और पूछते भी स्वयं हो'।

96. दिव्यदृष्टि — बाद में जिज्ञासावश संगत द्वारा पूछने पर स्वामी जी ने कहा— 'भाई ! जब हम कीर्तन कर रहे थे तब हमें बाबा जी कहीं से आते हुए दिखे थे। अतः हमें उनसे मिलने की चाह हुई और अंतर्यामी संत स्वयं आ पधारे'।

97. मर्यादापालन — स्वामी जी संतों व सद्गुरू के दरबार में नीचे जमीन पर ही बिस्तर बिछाकर शयन करते थे।

98. निर्मानी — ब्रह्मलीन होने से कुछ समय पूर्व स्वामी जी अपने गुरू दरबार 'रहड़की साहिब' गये। तेज गर्मी के मौसम में स्वामी जी सेवा कर रहे सेवक से झल्ली लेकर स्वयं सबको हवा करने लगे। इस पर गुरू गद्दी पर आसीन संत चंदीराम साहिब जी द्वारा सेवक से कहने पर कि संत जी को झल्ली खींचने कैसे दे दी, स्वामी जी विनम्रता पूर्वक बोले– 'साँई ! 'अंत में' मैं भी कुछ सेवा कर लूँ, मैं भी तो इस दर का दास हूँ'।

99. अंतर्यामी — स्वामी जी घट–घट के जाननहार प्रभु थे। एक बार सत्संग के समय सत्संगी भाई गोपाल दास जी की मन ही मन इच्छा हुई कि आज स्वामी जी मेरी पसंद का 'अपने गोपाल को लाल' वाला भजन सुनायें। कुछ ही मिनटों के बाद अंतर्यामी स्वामी जी ने यह भजन आरम्भ कर दिया।

100. दयावान — 'पन्नो आकिल दरबार' में गर्मी के दिनों में यदि कोई सेवादार अनुपस्थित होते तो स्वामी जी स्वयं दरबार साहिब में लगी झल्ली खींचकर हवा करके संगत को गर्मी से राहत पहुँचाते।

101. मुक्तिदाता — स्वामी जी के अनन्य प्रेमी भाई रूपचन्द जी प्रार्थना करते थेμ 'स्वामी जी! मेरे अंत समय आप मेरे नजदीक रहियेगा'। उनके अंत समय स्वामी जी उनके घर पहुँच गए। रूपचन्द जी का शरीर पवित्रा गोबर के लेप में रखा था। स्वामी जी के तीन बार पुकारने पर भाई रूपचन्द जी उठ बैठे। उन्होंने स्वामी जी को गद्गद् हृदय से नमन किया और शीत प्रसादी के लिए प्रार्थना की। स्वामी जी के कर कमलों से प्रसन्नतापूर्वक प्रसादी ग्रहण करके उन्होंने स्वामी जी से सत्यलोक जाने की आज्ञा माँगी। स्वामी जी ने कहाμ 'अच्छा प्यारे आपको सद्गुरू अपने चरणों में रखेंगे'। इस प्रकार स्वामी जी कृपा से वे भवसागर से पार हो गए।

102. अभयदानी — स्वामी जी अपने सान्निध्य में आने वालों को सांसारिक कष्टों से मुक्ति दिलाकर उन्हें अभय प्रदान करते थे, साथ ही जन्म–मरण के भय से मुक्ति दिलाने के लिए वे जन–जन को ईश्वर के सच्चे प्रेम की ओर प्रेरित करते थे।

103. सहजता — स्वामी जी ने सम्पूर्ण जीवन को बड़े ही सहज भाव से व्यतीत किया।

104. निरभिमानता	स्वामी जी में श्रेष्ठता के अभिमान का सर्वथा अभाव था।
105. आसक्तिरहित	स्वामी जी ने अपने स्वरूप से विजातीय शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि जड़ पदार्थों से अपना सम्बन्ध नहीं माना।
106. सर्वभूतहितेरता	शरीर तथा संसार से किचिन्मात्रा भी स्वार्थ का सम्बन्ध रहने के कारण स्वामी जी के सभी कर्म केवल दूसरों के हितार्थ ही होते थे। उनसे स्वतः स्वाभाविक ही प्राणीमात्रा का हित होता था।
107. युक्तात्मा	स्वामी जी का भगवान से अपनापन था। उसमें अनुकूलता–प्रतिकूलता को लेकर किचिन्मात्रा भी फ़र्क नहीं पड़ता था, प्रत्युत वह अपनापन दृढ़ होता और बढ़ता ही चला गया। स्वामी जी किसी भी अवस्था में भगवान से अलग नहीं होते थे, प्रत्युत सदा भगवान से अभिन्न रहते थे।
108. निरहंकार	स्वामी जी की अपने शरीर आदि के प्रति किचिन्मात्रा भी अहम्बुद्धि नहीं थी। वे सदा भगवान से अपने नित्य सम्बन्ध का ही अनुभव करते थे। इस कारण अपने अंतःकरण में स्वतः प्रकट होने वाले दिव्य गुणों को भी वे अपना न मानकर, प्रभु के ही मानते थे।